अध्याय : 3

मणि मधुकर के नाटकों में लोक-नाट्य-शैली प्रयोग

अध्याय : 3

मणि मधुकर के नाटकों में लोक-नाट्य-शैली प्रयोग

भूमिका

वास्तव में नाट्याचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्य-शास्त्र ग्रंथ में लोक-नाट्य पर कुछ विचार व्यक्त करते हुए लोकधर्मी नाट्य-परंपरा का प्रयोग प्राचीन काल से ही शुरू था, इस बात की ओर संकेत किया है। हिन्दी में लोक-नाट्य परंपरा भारतेन्दु युग से चली आ रही है। हमारे हिन्दी नाटककारों ने प्राचीन लोक-कथाओं या ऐतिहासिक, पौराणिक संदर्भों का आश्रय लेकर लोक-नाट्य लिखे हैं। लेकिन स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों ने जो लोक-नाट्य शैली अपनायी है वह कुछ मात्रा में प्रारंभिक लोक-नाट्य शैली से भिन्न प्रकार की है। विशेषतः लक्ष्मीनारायण लाल, जगदीशचन्द्र माथुर, भीष्म साहनी आदि ने लोक-नाट्य -परंपरा का जो प्रचलन किया, उससे मणि मधुकर ने कुछ अलग रूप में अपने नाटकों में लोक-नाट्य-शैली का प्रयोग किया है। इसलिए वे हिन्दी के एक अलग लोक-नाट्य-शैली के प्रयोगधर्मी नाटककार कहे जाते हैं।

1. लोक-नाट्य : शब्द प्रयोग और परिभाषा

लोक-नाट्य शब्द 'लोक' और 'नाट्य' इन दो शब्दों के मेल से बना है। "लोक" शब्द का प्रयोग आमतौर पर आम आदमी या साधारण व्यक्ति या समाज के लिए किया जाता है। समाज के सभ्य, शिक्षित एवं सुसंस्कृत कहे जाने वाले "लोक" से यह कुछ मात्रा में भिन्न है। "लोक" शब्द से आडम्बरहीन तथा सहज साधारण रूप में आचार व्यवहार करने वाले लोगों का बोध होता है। सामान्यतया किसी गांव में या विशिष्ट आंचलिक प्रदेश में रहने वाले लोगों को "लोक" संबोधित किया जा सकता है।

"नाट्य"शब्द में नृत्य, गीत, संगीत, अभिनेयता, वेशभूषा आदि का अर्थ द्योतित है वास्तव में नाट्य शब्द में मंचीय कला का बोध स्पष्ट है। रंगमंच पर खेला जाने वाला नाट्य-प्रयोग वास्तव में नाट्य है। यह नाट्य पात्रों के अभिनय, संवाद, नृत्य, गायन आदि के द्वारा अभिव्यक्त होता है। इस दृष्टि से उसका मंचीय रूप विशेष महत्त्वपूर्ण है।

डॉ॰महेन्द्र भानावत ने लोकनाट्य की परिभाषा इस प्रकार की है - "लोकधर्मी रूढियों की अनुकरणात्मक अभिव्यक्तियों का वह नाट्य रूप, जो अपने-अपने क्षेत्र के लोकमानस को अल्हादित, उल्लसित एवं अनुप्राणित करता है, लोकनाट्य कहलाता है।"[1]

2· <u>लोक-नाट्य की विशेषताएँ</u>

लोक-नाट्य की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

·1· लोकनाट्यों के रंगमंच खुले एवं सादा होते हैं। एक या दो पर्दों से काम चल जाता है। दृश्यों की कल्पना कर ली जाती है।

·2· कथानक अधिकतर पौराणिक होते हैं। ऐतिहासिक वस्तु भी पौराणिक परिवेश में सामने आती है। कुछ सामयिक विषयों पर भी हास्य-व्यंग्यात्मक लघु-रूपक होते हैं।

·3· पात्रों में प्रायः वर्गगत प्रतिनिधि होते हैं, जिनका आचरण परंपरागत होता है। एक पात्र विदूषक के प्रकार का होता है, जो हास्य-योजना द्वारा मनोरंजन करता है। स्त्री पात्रों का अभिनय भी पुरुष ही स्त्रीवेश में करते हैं।

·4· भाषा पद्यबद्ध होती है। भांडों के हास्यात्मक अभिनय आदि में गद्य भी प्रयुक्त होता है। यह गद्य भी प्रायः तुकांत होती है। भाषा पर आँचलिक प्रभाव पाया जाता है।

·5· संगीत लोक-नाट्यों की शक्ति है। आरंभ से अंत तक आँचलिक वाद्य बजते रहते हैं। नृत्य का विशेष समावेश रहता है। बीच-बीच में लोकगीत भी आते रहते हैं।

·6· शैली कथात्मक या वर्णनात्मक रहती है।

·7· जन-सुलभ, बोधगम्य एवं लोकधर्मी तत्वों का पूर्ण समावेश रहता है।

·8· लोक-नाट्य के प्रेक्षकों का मुख्य उद्देश्य सरस मनोरंजनात्मक अधिक रहता है, कलात्मक एवं बौद्धिक कम।[2]

लोक-नाट्य पर क्षेत्रीय रंग चढ़ा रहता है। डॉ·दुर्गा दीक्षित के अनुसार - "लोक-नाट्य के गीत, नाद, वाद्य, भाषा, कथा आदि उपकरणों पर क्षेत्रीय रंग चढ़ा रहता है। क्षेत्रीय भाषा, रीतिरिवाज, संस्कार, धार्मिक विश्वास, खान-पान, पहनावा आदि के साथ युग के प्रभाव से लोकनाट्य अछूता नहीं रह सकता।···फिर भी उनमें एक समान सूत्र भी निहित होता है।"[3]

3· लोक-नाट्य के प्रकार

लोकनाट्य के अनेक रूप भारत के विविध प्रांतों में सदियों से जनता का मनोरंजन कर रहे हैं। पंजाब, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में नौटंकी, नकल, स्वांग, रामलीला, कृष्णलीला, बंगाल में यात्रा, महाराष्ट्र में तमाशा, गुजरात की भवाई, मद्रास प्रांत का पागलवेशम, मैसूर का यक्षगान और आंध्र के विथि-नाटकम् बराकथा और कुचीपुडी आदि लोकनाट्य के जीवंत रूप हैं।[4] लोक-नाट्य परंपरा के ज़्यादातर प्रकारों का विकास संस्कृत नाट्यरूपों से ही माना जाता है। इसलिए लोकनाट्य और संस्कृत नाट्य रूपों की मौलिक रूढियों और व्यवहारों में हमें समानता दिखाई देती है।

4· हिन्दी में लोकनाट्य परंपरा और मणि मधुकर

लोकधर्मी परंपरा भारतेन्दु काल से चली आ रही है। उस काल में यह परंपरा अधिक सक्रिय रही। लोकधर्मी परंपरा से ही रंगमंच को नवजीवन प्राप्त हुआ। शालिग्राम का "इश्क चमन", उस्ताद इंदर का "सांगीत गोपीचन्द", प्रताप नारायण मिश्र का "सांगीत शाकुन्तल" स्वांग शैली के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। राजस्थान में अनेक स्वांग प्रचलित हैं। उनमें मुख्य स्वांग निम्न हैं -

·1·ख्याल झामटड़े, ·2·टूंटिया टूंटकी, ·3·जमराबीज का स्वाँग, ·4·उदयपुर के स्वाँग, ·5·न्हाण, ·6·बादशाह की सवारी, ·7·नारों का स्वाँग, ·8·बहुरूपिया की सवारी, ·9·भवाई।[5]

लोकनाट्य को समूचा माध्यम बनाकर डॉ·लक्ष्मीनारायण लाल ने "नाटक तोता मैना", "कलंकी", "एक सत्य हरिश्चन्द्र" और "सगुन पंछी" की रचना की है। "एक सत्य हरिश्चन्द्र" और "सगुन पंछी" में लोकनाट्य शैली को ज्यों का त्यों उतारा गया है। धर्मवीर भारती का "अंधायुग", लक्ष्मीनारायण लाल का "कलंकी" और जगदीशचन्द्र माथुर का "पहला राजा" नाटकों में अन्य नाट्य परंपराओं के साथ लोक-नाट्य परंपरा के भीतर से नये हिन्दी नाट्य की तलाश की गयी है। इतना ही नहीं, लोक-नाट्य के व्यवहार, रूढियों तथा परंपराओं का उपयोग इन प्रयोगधर्मी कृतियों में हुआ है।[6]

नये हिन्दी नाटकों में लोक-नाट्य शैली का प्रयोग युक्ति के रूप में किया गया है। लक्ष्मीनारायण लाल, मणि मधुकर और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने किए प्रयोग अधिक उल्लेखनीय हैं। साठोत्तरी हिन्दी नाटककारों में मणि मधुकर एक ऐसे नाटककार हैं, जिन्होंने अपने नाटकों में लोक-नाट्य शैली का अनूठा प्रयोग किया है। इसलिए वे हिन्दी के एक अलग प्रयोगधर्मी नाटककार हैं। मणि मधुकर के "दुलारीबाई" और "इकतारे की आँख" नाटक लोक-नाट्य-शैली के अच्छे उदाहरण हैं। साथ ही साथ उनके "रसगंधर्व", "बुलबुल सराय" एवं "बोलो बोधिवृक्ष" नामक असंगत नाटकों में भी लोक-नाट्य-शैली का प्रयोग कुछ मात्रा में दृष्टिगोचर होता है।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम उनके लोक-नाट्य-शैली को तीन रूपों में विभाजित कर सकते हैं -

क· लोक-कथाओं का प्रयोग

ख· लोक-जीवन अभिव्यक्ति प्रयोग

ग· लोक-गीत प्रणाली प्रयोग

क. <u>लोक-कथाओं का प्रयोग</u>

जिस प्रकार मणि मधुकर एक असंगत नाटककार की हैसियत से मशहूर हैं, उस प्रकार वे एक लोक-नाट्य-शैली के अभिनव प्रयोग करने वाले सिद्धहस्त नाटककार भी हैं। उन्होंने अपने नाटकों में कुछ लोक-कथाओं का सुंदर प्रयोग करके अपनी प्रतिभा का और लोक-संस्कृति का परिचय दिया है। उनके लोक-कथाओं के मूल स्त्रोत मुख्यतया देहाती लोकजीवन से संबंधित है। कुछ लोक-कथाएँ प्राचीन मिथकों से ले ली गयी हैं तो कुछ लोक-कथाएँ उनके अनुभवजन्य ज्ञान और भोगे हुए यथार्थ की परिचायक हैं। इन लोक-कथाओं के माध्यम से उन्होंने लोक-जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हुए भारत के लोक-जीवन की नयी व्याख्या और नयी अर्थवत्ता प्रस्तुत की है।

उनके विवेच्य नाटकों में निम्नलिखित लोक-कथाओं का सुंदर प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

अ. <u>गंधर्वों की कहानी</u> :- नाटककार मणि मधुकर ने रसगंधर्व नाटक में पुरातन गंधर्व मिथकों का आधुनिक जीवन संदर्भ में इस्तेमाल किया है। पुराणों के अनुसार देवताओं का एक भेद गंधर्व है, जो स्वर्ग में रहते हैं तथा उनसे तीन पाद कम ऐश्वर्य वाले हैं। ये यक्ष, राक्षस तथा पिशाचों की तरह अर्ध देवता है। चित्ररथ इनका स्वामी कहा गया है। ये स्वर्ग में गाने बजाने का काम करते हैं। इनके ग्यारह गण कहे गये हैं - अभ्राज, अंधारि, रंभारि, सूर्यवर्चा, कृधु, हस्त, सुहस्त, मूर्द्धवान्, महामना, विश्वावसु और कृशानु। अग्नि और वायु पुराण के अनुसार ये भद्रा के पुत्र हैं। वेदों के अनुसार गंधर्व दो हैं - एक द्युस्थान के दूसरे अंतरिक्षस्थान के। पहली कक्षा के दिव्यगंधर्व कहे जाते हैं जो सोम रक्षक तथा सूर्य के सारथि हैं। अंतरिक्षस्थान के गंधर्व नक्षत्र के प्रवर्तक कहे गये हैं। इन लोगों से सोम छीन कर इंद्र मनुष्यों को देता है। वरुण इनका स्वामी है। ब्राह्मणग्रंथों और उपनिषदों के अनुसार गंधर्व दो प्रकार के होते हैं - देवगंधर्व तथा मनुष्यगंधर्व।[7]

नाटककार मणि मधुकर ने रसगंधर्व नाटक में गंधर्वों के मिथक को आधुनिक जीवन संदर्भ में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने यह दर्शाया है कि ये पाँच गंधर्व अप्सराओं के साथ अवैध संबंध रखते थे और इसी कारण वे अप्सराएँ गर्भवती हो गयी थीं। जब देवताओं के राजा इंद्र को इस बात का पता लगा, तब वे क्रोधित हो उठे और उन्होंने इन पाँच गंधर्वों को शाप दिया कि वे मृत्युलोक में घोर दुःख भोगे। उस शाप से मुक्त होने का गुर इन गंधर्वों ने पूछा तब इन्द्र ने उनसे कहा कि जब इन गंधर्वों का किसी ऐसी अविवाहित कन्या से साक्षात्कार होगा, जिसने एक साथ पाँच पुत्र उत्पन्न किए हो, तो उसके दर्शन मात्र से गंधर्व शापमुक्त हो जायेंगे।

नाटककार मणि मधुकर ने रसगंधर्व नाटक में यह दर्शाया है कि चार गर्भवती अप्सराओं ने गर्भपात करवाये लेकिन एक गर्भवती अप्सरा ऐसी थी, जिसमें मातृत्व की लालसा अत्यधिक थी। इस लालसा के कारण उसे इन्द्र-लोक से निष्कासित होना पड़ा। इस अप्सरा ने नौ महिने कष्ट सहे और एक पुत्र को जन्म दिया, ऐसा पुत्र जो कर्ण बन सकता था। इस घटना की जानकारी देवराज इन्द्र को मिलने पर वे आगबबुला हो उठे। उन्होंने नवजात शिशु को समुद्र में फिकवा दिया और उस अप्सरा को शाप दिया कि राजकन्या के रूप में उसे मानवी देह की प्राप्ति होगी। अप्सरा ने पूछा कि "मानवी देह में कब तक रहना होगा ?" इन्द्र ने कहा "एक समय आयेगा जब पाँचों पतित गंधर्व तुमसे मिलेंगे। उनकी काम दृष्टि के संपर्क मात्र से तुम, अविवाहित अवस्था में गर्भ धारण करोगी। तुम्हारे पाँच पुत्र पैदा होंगे और गंधर्वों से पुनः साक्षात्कार होते ही तुम मुक्त हो जाओगी।"[8] इसके बाद वह अप्सरा और पाँच गंधर्व शापमुक्त हुए।

इस लोक-कथा के माध्यम से नाटककार ने आज के मानव की काम-लालसा और स्त्री-पुरूषों के अवैध संबंधों पर प्रकाश डालकर कौमार्य भंग की वजह से कुमारिकाएँ गर्भपात कर सकती हैं, इस पर प्रकाश डाला है। पुरातन मिथक द्वारा आधुनिक जीवन की यथार्थता यहाँ स्पष्ट है। नाटक का शीर्षक भी इस लोक-कथा पर आधारित है।

आ· <u>पुश्तैनी जूतों की कहानी</u> :- मणि मधुकर के "दुलारीबाई" नाटक में नाटककार ने "पुश्तैनी जूतों की कहानी" को बड़े ही मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है और इस कहानी के माध्यम से दुलारीबाई के चरित्र पर प्रकाश डाला है। नाटक के प्रारंभ से अंत तक यह कहानी किसी न किसी रूप में मौजूद है। नाटक के प्रारंभ में नाटककार ने यह दर्शाया है कि दुलारीबाई एक देहाती और कंजूस नारी है। वह इतनी कंजूस है कि घर के पुश्तैनी जूते फट जाने पर भी वह उनका इस्तेमाल करती रहती है। ये पुश्तैनी जूते मूलतः दुलारीबाई के दादा के हैं। दादा की मृत्यु के उपरान्त उन जूतों का इस्तेमाल दुलारीबाई के पिता करते रहे, और पिता के उपरान्त उनका इस्तेमाल उनकी लड़की अर्थात दुलारीबाई करती रही है। ये जूते उस गाँव के मशहूर जूते माने जाते हैं। सारा गांव इन जूतों को अच्छी तरह से पहचानता है। इन जूतों के प्रति दुलारीबाई के मन में प्रथमतः बड़ा लगाव रहा है। जूते फट जाने पर भी उनका इस्तेमाल दुलारीबाई करती है। और उनकी मरम्मत के लिए ननकू मोची को तीन पैसे देने की सोचती है। दो पैसे दो तल्लों के लिए और एक पैसा सिलाई के लिए।[9] वास्तव में वे जूते इतने पुराने हो चुके हैं कि उन्हें पहनकर चलते समय उसे तकलीफ होती है और इसी कारण वह उन जूतों को अपने हाथ में उठाकर चलती है। कल्लू बहुरूपिया बनकर आता है और इन पुश्तैनी जूतों के बारे में उससे कहता है कि इन जूतों को अब फेंक देना उचित होगा, लेकिन वह कल्लू से कहती है कि इन जूतों में ही उसकी जान बसती है। अतः वह जूते फेंक देने के लिए राजी नहीं होती है।

एक दिन दुलारीबाई गांव के कृष्ण मन्दिर में प्रवेश करती है और भगवान को एक पैसा चढ़ाती है। मन्दिर से बाहर निकलने पर उसे नये चमचमाते हुए जूते दिखाई पड़ते हैं उस समय उसे उन जूतों का मोह हो जाता है। वह कहती है कि भगवान को एक पैसा अर्पन करने से उसने ही यह जूते उसके लिए भेज दिए होंगे। अतः वह अपने पुश्तैनी जूते वहीं छोड़ देती है और नये सुन्दर जूते पहनकर अपने घर चली जाती है। उस मन्दिर से उस गांव के पटेल और गंगाराम भी बाहर निकलते हैं, तब पटेल को यह महसूस होता है कि अपने जूतें यहाँ नहीं हैं और किसी दूसरे

के ही फटे-टूटे जूतें वहाँ रखे गए हैं। गंगाराम उन फटे जूतों को अच्छी तरह से जानता है और पटेल से कहता है कि ये जूते और किसी के नहीं, दुलारीबाई के ही हैं। ये बड़े मशहूर जूते हैं। आजकल ये दुलारीबाई के पैरों की शोभा बढ़ाते हैं।[10] पटेल को अपने जूतों की चोरी होने के कारण बहुत अफसोस होता है, और जूतों की तलाश करने के लिए वह गंगाराम को भेजता है। रास्ते में गंगाराम को दुलारीबाई दिखाई देती है। वह जान जाता है कि दुलारीबाई के पैरों में पटेल के ही नए जूते हैं। उस समय दुलारीबाई गंगाराम को गालियाँ देते हुए कहती है कि ये जूते उसे भगवान की कृपा से ही मिले हैं - "मैं गई थी मंदिर में - एक पैसा चढ़ाया मैंने भगवान के आगे और उसने खुस होके पहना दी यह जूतों की जोड़ी।"[11] लेकिन गंगाराम दुलारीबाई की बात नहीं मानता है और चिमना मांझी की सहायता से दुलारीबाई को पटेल के सम्मुख खड़ा करता है। पटेल गांव का मुखिया होने के कारण दुलारीबाई को जुरमाने के रूप में दो हजार रूपये पंचायत में जमा करने के लिए कहता है। मजबूरन दुलारीबाई दो हजार रूपये पंचायत में जमा करती है। उस समय वह अपने पुश्तैनी जूतों को अपने पास नहीं रखना चाहती और कहती है कि - "अब मैं इन मनहूस जूतों को अपने पास नहीं रखूंगी, हरगिज नहीं। ऐसा करती हूँ कि इन्हें एक थैले में रखकर कही फेंक आती हूँ।"[12]

दुलारीबाई रात के समय थैले में पुश्तैनी जूते रखकर वह थैला लेकर गांव की सीमा के आखिरी मकान के पास जाती है और वहाँ वह थैला गाढ़ने का प्रयास करती है। मकान मालिक फर्जीलाल उस दृश्य को देखकर बाहर आता है। उसे देखकर दुलारीबाई घबरा जाती है और भागने लगती है। फर्जीलाल उसका पीछा करता है। इस दौड-धूप में पटेल का घर आ जाता है और फर्जीलाल जोर से पुकारता है- "पटेलजी, चोर। पटेल जी चोर।"[13] यह शब्द सुनकर आधी रात को पटेल लालटेन उठाए बाहर आता है। तब उसे मालूम हो जाता है कि यह चोर और कोई नहीं, दुलारीबाई ही है। फर्जीलाल एक बड़ा धूर्त व्यक्ति है और झूठी गवाही देकर पैसा प्राप्त करना उसका धंधा बन गया है। अतः वह कहता है कि दुलारीबाई ने उसके घर में तीन बार चोरी की है। यह सब देखकर पटेल दुलारीबाई से कहता है कि वह एक बार चोर

साबित हो चुकी है और दूसरी दफा चोरी करते समय पकड़ी गयी है। इसी कारण पटेल दुलारीबाई को यह आदेश देता है कि वह पाच सौ रुपये जुरमाने के रुपये सुबह होते ही पंचायत के खजाने में जमा करे और पचास रुपये बतौर हरजाने के रूप में फर्जीलाल को दे। उस समय दुलारीबाई बहुत दुःखी होती है और रोने लगती है। कहती है कि - "हाय ये मनहूस जूते। हाय, मैं मर गई।"[14] फर्जीलाल उसे उसके घर पहुँचाता है।

दूसरे दिन दुलारीबाई कुछ सोच-विचार कर जूतों वाले उस थैले को गांव की नदी के पानी में फेंक देती है और ननकू मोची को दूसरे जूते बनवा देने का आदेश देती है। जूते फेंक देने के बाद वह नंगे पैर चलने लगती है। इतने में चिमना मांझी से उसकी मुलाकात हो जाती है। वह कहता है कि दुलारीबाई इतनी गरीब नहीं है कि जूते खरीद न सके। तब दुलारीबाई चिमना से कहती है कि उसके खानदानी जूते खो गए हैं और नए जूते अभी तैयार नहीं हुए हैं। उस पर चिमना मांझी कहता है कि दुलारीबाई के जूते इतने मशहूर हैं कि वे कहीं खो ही नहीं सकते और वह उसके खानदानी जूते उसके सामने रख देता है। दुलारीबाई घबरा जाती है और सोचती है कि ये जूते वापस आ गए हैं। वह यह भी सोचती है कि भगवान की मेहरबानी बार-बार टपकती है इन्हीं जूतों पर। चिमना दुलारीबाई से कहता है कि वह इन जूतों को पंचायत में जमा करना चाहता था। लेकिन उसे दुलारीबाई का खयाल आता है और वह दुलारीबाई को ही वे जूते वापस देता है। दुलारीबाई भी कहती है कि ये जूते पंचायत में नहीं जाने चाहिए। अन्यतः उसे फिर जुरमाना देना पड़ेगा। अतः दुलारीबाई चिमना मांझी पर खुश होती है और उसे इस घटना के लिए एक रुपया देती है और कहती है कि पटेल तक यह बात न पहुँचे। आखिर दुलारीबाई इतनी परेशान हो जाती है कि वह अपने पुश्तैनी जूतों को अपने घर की खिड़की से बाहर फेंक देती है। उस समय फर्जीलाल उन जूतों को देखता है और एक तरकीब सोचकर अपना माथा पत्थर से फोड लेता है। उसके माथे से खून बहने लगता है। उस दशा में वह दुलारीबाई के घर में प्रवेश करता है और उसे कहता है तुम्हारे जूतों के फेंकने

के कारण ही मेरी यह दशा हो गयी है। दुलारीबाई उसके जख्म पर पट्टी बांध देती है और थोडा आराम करने के लिए कहती है। फर्जीलाल विचित्र आदमी है। वह दुलारीबाई को धमकी देता है कि वह पटेल के पास जाकर फरियाद करेगा और दुलारीबाई से महिने की दवा-दारू का खर्चा निकाल लेगा। दुलारीबाई उसे समझाने की कोशिश करती है। दुलारीबाई उस जख्म के लिए पाँच रुपये फर्जीलाल को देने के लिए राजी होती है। आखिर फर्जीलाल उससे सौ रुपये निकालता है।

अपने घर जाते समय वह दुलारीबाई के पुश्तैनी जूते दरवाजे से फेंकता है और वे जूते इत्र की शीशियों पर गिरते हैं। इत्र की सारी शीशियाँ टूट जाती हैं। उस समय दुलारीबाई बहुत निराश होती है। उसका कलेजा टूक-टूक हो जाता है। उसे इस बात का विश्वास हो जाता है कि ये पुश्तैनी जूते मनहूस हैं। अतः इन जूतों से अब वह छुटकारा पाना चाहती है। वह गंगाराम से कहती है कि - "मैं इन जूतों से मुक्ति चाहती हूँ पर ये मुझे छोड़ते ही नहीं। बार-बार लौट आते हैं। मैंने इनके लिए जुर्माना भरा है, हर्जाना चुकाया है। अब मैं चाहती हूँ कि आप इन्हें पंचायत में रख ले, जिससे मेरी परेशानी मिटे।"[15] इतने में गांव में खबर फैल जाती है कि उस गांव में राजाजी आये हैं। अतः गंगाराम और पटेल दुलारीबाई की ओर ध्यान नहीं दे पाते। पटेल गुस्से में आकर उन जूतों को दुलारीबाई के पास ही छोड़ देता है। यह राजाजी और कोई नहीं, बहुरूपिया कल्लू भांड ही है जो राजा के वेश में अवतरित होता है, और दुलारीबाई के पुश्तैनी जूतों का मुकुट पहनकर ही वह राजा बन जाता है। उसके पीछे-पीछे दुलारीबाई दुल्हन बन जाती है। पटेल और गंगाराम तथा गायन मंडली फूल बरसाती है। गायन मंडली गाती हुई कहती है कि जो जूते कभी मनहूस बने थे वे जूते अब दुल्हे के माथे का सेहरा बन गए हैं।[16] नाटक के अन्त में दुलारीबाई को स्वप्न आ जाता है और ईश्वर के वरदान से वह जिस वस्तु को छू लेती है वह वस्तु सोने की बन जाती है। अपने पुश्तैनी जूतों को छूने पर वे भी सोने के हो जाते हैं। यहाँ जूतों की कहानी समाप्त हो जाती है।

इस लोक-कथा के माध्यम से नाटककार मणि मधुकर ने दुलारीबाई की कंजूसी, उसका शोषण, तथा पंचायत राज का विपरीत न्यायदान दर्शाया है। यह कथा केवल दुलारीबाई की नहीं, भारत के प्रत्येक देहात में इस तरह की दुलारीबाई और उसकी जीवन-कथा और व्यथा देखी जा सकती है। नाटककार द्वारा लोक-कथा का यह प्रयोग देहाती जीवन की यथार्थता का द्योतक है।

इ· <u>सोने के लालच की कहानी</u> :- मणि मधुकर के दुलारीबाई नाटक का अंत प्रसिद्ध "सोने के लालच की कहानी"से हुआ है। यहाँ नाटककार ने स्वप्न-दृश्य--शैली में सोने की कहानी को प्रस्तुत किया है। कल्लू भांड के साथ (जो राजा बनकर आया था) विवाह होने के उपरान्त उसके विवाह की कलई खुल जाती है और उसके सामने एक स्वप्न खड़ा हो जाता है। स्वप्न में दुलारीबाई ईश्वर को देखती है और यह ईश्वर दुलारीबाई के मन में निहित इच्छा की पूर्ति करता है। दुलारीबाई ईश्वर से वरदान माँगती है कि वह जिस चीज को छू देगी वह सोने की हो जाएगी। ईश्वर "तथास्तु" कहकर अदृश्य हो जाते हैं। ईश्वर के वरदान की परख लेने के लिए वह सर्वप्रथम पेड़ को छूती है और अचरज के साथ कल्लू से कहती है कि वह पेड़ सोने का हो गया है। तत्पश्चात वह अपने पुश्तैनी जूतों को भी छूती है और वे सोने के हो जाते हैं। उसके मन में यह विचार आ जाता है कि उसके पास इतनी दौलत हो जाएगी कि कोई राजा या बादशाह भी उसका मुकाबला नहीं कर सकेगा। तत्पश्चात वह स्वप्न में कल्लू भांड, गंगाराम, फर्जीलाल तीनों को छूती है और वे तीनों भी सोने के हो जाते हैं। उस समय दुलारीबाई को ऐसा लगता है कि मानो वह सोने के देश की परी ही हो गयी है। उसे अपनी नानी की याद आती है। नानी उसे कहानी सुनाती थी। अतः वह अपने मन में सोचने लगती है - "नानी सुनाती थी, सोने के देश में रहने वाली परी की कहानी। यही तो है, वह सोने का देश और मैं हूँ वह परी।"[17]

कुछ देर बाद दुलारीबाई को कुछ खा लेने का खयाल आ जाता है और वह कटोरदान खोलती है। उसे उसमें जलेबी, गुलाबजामुन, मालपुए आदि खाने की चीजें

दिखाई पड़ती हैं, लेकिन जब वह उन चीजों को छू लेती है, तब वे सब चीजें सोने की हो जाती हैं। खाने के लिए कुछ न मिलने पर वह बड़ी निराश बन जाती है और सोचने लगती है ईश्वर ने जो वरदान दिया है उसका नतीजा बहुत बुरा निकला है। अतः दुलारीबाई प्रार्थना करती है कि ईश्वर अपना वरदान वापस ले ले। वह ईश्वर से कहती है कि मुझे सोना नहीं चाहिए। मैं तो पहले की तरह रहना चाहती हूँ। उसका पछतावा देखकर ईश्वर अपना वरदान वापस लेता है। यहाँ सोने के लालच की लोक-कथा समाप्त हो जाती है।

इस कथा के माध्यम से नाटककार ने "पैसा-पैसा" करने वाली दुलारीबाई की पश्चात्तापदग्ध स्थिति को चित्रित किया है। पैसे के लालच का फल हमेशा बुरा होता है।

ई· <u>पुतलों की कहानी</u> :- दुलारीबाई नाटक के प्रारंभ में नाटककार ने पुतलों की कहानी का एक अनूठा प्रयोग किया है। काठ के पुतले खुद का परिचय देते हुए कहते हैं कि हम काठ के पुतले हैं और काठ के पुतले के रूप में रहना ही हमें अच्छा लगता है; क्योंकि मनुष्य बनकर भ्रष्टाचारी बनने की अपेक्षा काठ के पुतले के रूप में रहना ही अच्छा है। पुतला एक और पुतला दो के वार्तालाप के द्वारा इस कहानी में बताया गया है कि मनुष्य पैसे का लोभी है और पैसे के लालच में वह सबका छल करता है, भ्रष्टाचार करता है। वे यह भी कहते हैं कि हम निष्प्राण हैं, लेकिन जिनमें प्राण हैं वे लोग रात-दिन झूठ में डूबे हुए हैं और धन के पीछे घूम रहे हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि रुपये में ही प्रभुजी का निवास है। इतना ही नहीं, ये लोग काला धन कहाँ छुपाएँ, ज़्यादा मुनाफा कैसे कमाएँ इसी चिन्ता में व्यस्त रहते हैं और इसी कारण अनेकों को धोखा देते रहते हैं। दौलत में ही खूब इजाफा हो ऐसा सोचते हैं। ये धन के लोभी हम पुतलों को आँखें दिखलाते हैं।

नाटककार ने इस लोक-कथा के माध्यम से यह भी बताया है कि दुलारीबाई पैसे की लालची है। सभी लोग पैसे के लालच में फँस गए हैं और साथ ही साथ

नाटककार ने गायन-मंडली के मुँह से यह भी बताने की कोशिश की है कि देहातों में लोकनाट्य करने वाली गायन-मंडली की दशा "काठ के पुतले" जैसी ही हो गयी है। क्योंकि लोकधर्मी तथा रंगधर्मी होने पर भी उनकी उपेक्षा की जाती है। उनका अप्रत्यक्षतया आर्थिक शोषण किया जाता है और वे काठ के पुतले की भाँति मानो निष्प्राण हो जाते हैं। यहीं आज के लोक-रंगकर्मियों की शोचनीय स्थिति है।

उ. <u>न्यायाधीश और चोर की कहानी</u> :- बुलबुल सराय नाटक में मणि मधुकर ने न्यायाधीश और चोर की लोक-कथा को चित्रित किया है। इस नाटक में "क" न्यायाधीश है, "ख" चोर है, उसे प्रियदर्शी चोर संबोधित किया गया है। नट और नटी के घर चोरी हुई है। इस संदर्भ को लेकर नाटककार ने लोक-कथा को बुना है। न्यायाधीश मायासुर की न्यायव्यवस्था का संचालक है, दण्डनायक है। वह कहता है कि कानून का आधार तर्क है। इतने में प्रियदर्शी चोर कहता है तर्क का आधार कुतर्क है। इन दोनों के (क और ख) माध्यम से नाटककार ने विडम्बनात्मक शैली में यह लिखा है कि सुबह खाना खाना एक भयंकर अपराध है। इन दोनों के वार्तालाप के बीच नट अपना प्रस्ताव न्यायाधीश के सामने रखता है और कहता है कि उसके साथ अन्याय हुआ है और वह न्यायाधीश से न्याय चाहता है। नट कहता है कि कल रात उसके घर में चोरी करने के लिए यह (प्रियदर्शी चोर) उसके घर में घुसा। उस समय नट की नींद टूट गयी। चोर का पेर फिसल जाने से वह आंगन में गिर पड़ा। उस समय रात में नट का लड़का, जिसकी उम्र छह साल की थी, बाहर चारपाई पर सो रहा था। चोर का पैर लड़के की अँतडियों पर पड़ा और मासूम लड़के ने तत्काल अपने प्राण त्याग दिए। इस समय नटी न्यायाधीश से कहती है कि यह हत्यारा है। उसकी सूरीली आवाज सुनकर न्यायाधीश चौंक उठता है। तब नट कहता है कि वह मेरी घरवाली है और न्यायाधीश भी कहता है वो मेरे मित्र की पत्नी है। इतने में चोर अपनी जेब से हार निकालकर दिखाता है और कहता है कि यह हार सच्चे मोतियों का है और मैंने उसे आपकी श्रीमतीजी को दिखाया है तथा उन्होंने भी उस हार को खूब पसंद किया है। इतने में नटी कहती है, "यह तो मेरा हार है उसने चुरा लिया"

और नट कहता है "इसने मेरे बच्चे को मार डाला।" न्यायाधीश सबको खामोश रहने के लिए कहता है और कहता है कि उसे शत-प्रतिशत विश्वास हो गया है कि यह चोर है और इसने तुम्हारे बच्चे की हत्या की है। प्रियदर्शी चोर अपराध स्वीकार करता है। उस समय न्यायाधीश कहता है कि चोर को हर्जाना देना पडेगा, क्योंकि इस भाई (नट) का लड़का मर गया है और उसे भारी नुकसान हुआ है। अतः इस भाई को उसका लड़का लाकर देना होगा। न्यायाधीश की इस राय पर चोर कहता है कि लड़का तो मर गया, कहाँ से लाकर दूँ। उस पर न्यायाधीश कहता है कि तुम्हें जिन्दा लड़का देना होगा। उस समय सब विस्मित हो जाते हैं। न्यायाधीश इस तरह न्याय देता है - "तो - मेरा निर्णय यह है कि इस भाई की पत्नी उस समय तक चोर के पास रहे, जब तक - कि वह नये पुत्र को - प्राप्त - न कर लें। एक इसी व्यावहारिक तरीके से यह चोर, हरजाने के रूप में मृत माँ-बाप को नया लड़का दे सकता है।"[18]

इस लोक-कथा के माध्यम से नाटककार ने मायासुर की न्याय-व्यवस्था और दण्डनायक पर व्यंग्य कसा है और दर्शाया है कि आज का न्यायाधीश रिश्वत लेकर चोर के पक्ष में ही न्यायदान करता है।

ऊ. <u>सुखी व्यक्ति के कुरते की कहानी</u> :- हमारी प्राचीन लोककथाओं में सुखी व्यक्ति के कुरते की कहानी विशेष प्रसिद्ध है। इस कहानी में बीमार राजा को तन्दुरूस्त होने के लिए सुखी व्यक्ति के कुरते की आवश्यकता होती है। इसलिए ऐसे व्यक्ति के कुरते की तलाश की जाती है। लेकिन पूरी दुनिया में सुखी व्यक्ति का कुरता नहीं मिलता और राजा की मृत्यु हो जाती है। नाटककार मणि मधुकर ने इस लोक-कहानी के आधार पर "बुलबुल सराय" नाटक में सुखी व्यक्ति के कुरते की कहानी को नये ढंग से प्रस्तुत किया है। बुलबुल सराय नाटक का एक प्रमुख पात्र है - राजा प्रचण्डसेन। वह बीमार हो जाता है और उसकी बीमारी को दूर करने के लिए सुखी व्यक्ति के कुरते की आवश्यकता रहती है। इस नाटक में सुखी व्यक्ति के कुरते की तलाश का काम नटी (प्रधान गुप्तचर) को सौंपा जाता है। सर्वप्रथम प्रधान गुप्तचर

नटी महामात्य (क) को ही सुखी आदमी समझकर उनसे कहती है कि आप ही सुखी व्यक्ति हैं और आप अपना कुरता राजा को दे सकते हैं। लेकिन प्रधान गुप्तचर के इस प्रस्ताव पर महामात्य कहते हैं कि राज-काज ने ही उनके सारे सुख छीन लिए हैं। कभी सेनापति ने उनके खिलाफ सम्राट के कान भर दिए हैं तो कभी कोषाध्यक्ष ने चुगली खायी है। इतना ही नहीं, उनका शरीर स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है। वे निःसंतान हैं और उनकी पत्नी के वित्तमंत्री से कुछ ऐसे-वैसे संबंध भी हैं। अतः महामात्य का कुरता सुखी व्यक्ति का कुरता नहीं हो सकता।[19]

तत्पश्चात प्रधान गुप्तचर (नटी) नट के पास जाती है, जो जगत्सेठ के रूप में नाटक में आया है। जगत्सेठ उसके घर में प्रवेश करने पर हड़बड़ा जाता है। तब गुप्तचर उससे कहती है कि वह उसके जवाहरात की तलाश करने के लिए नहीं आयी है; बल्कि सम्राट को किसी पूर्ण सुखी व्यक्ति का कुरता चाहिए, जिससे उनकी जान बच सकती है। लेकिन गुप्तचर के इस प्रस्ताव पर जगत्सेठ उससे कहते हैं कि वे रात-दिन चिन्ता में मग्न रहते हैं। अधिकारियों को खिलाते-पिलाते रहने के बावजूद वे उनके दोनों लडकों को तस्करी के जुर्म में पकड़कर ले गए हैं। उनकी घरवाली इतनी मोटी हो गयी है कि वह न उठ सकती है, न चल सकती है। इतना ही नहीं, इस बार जूट के धंधे में भी जगत्सेठ को घाटा हुआ है। जगत्सेठ की इन परेशानियों को सुनकर गुप्तचर कहती है कि नफे को भी घाटा मानने वाले जगत्सेठ कभी सुखी नहीं हो सकते हैं। अतः उनका कुरता व्यर्थ है।[20]

तत्पश्चात वह एक किसान (ख) के पास पहुँचती है। यह किसान अपने खेत में गुमसुम खड़ा है, वह भूखा है और उसने घास-फूस की एक लंगोटी पहनी है। वह जीवन से चिपटा हुआ है। यद्यपि उसका पेट खाली है, कंठ प्यासा है, फिर भी प्रत्येक ऋतु के सम्मुख वह निर्भीक और निड़र है। वह हमेशा पसीने से लथपथ रहता है, लेकिन उसके साहस का रथ कभी रूकता नहीं है। जो कुछ कुरूप है, वह सुन्दर बन जाए यही कामना उसके मन में छुपी हुई है। उसे देखकर गुप्तचर हतप्रभ और किंचित भयभीत भी हो जाती है। उसे ऐसा लगता है कि मानो वह प्रेत ही है। वह किसान से कहती है कि तुम प्रेत हो। तब किसान ठहाका लगाकर उससे

बताता है कि मुझे भले ही प्रेत समझा जाए, लेकिन मैं आदमी हूँ, अलगोजा बजा लेता हूँ। वो अकेला नहीं है। मैना, खरगोश, भालू, साँप आदि उसके मित्र ही बने रहे हैं। जब वह गुप्तचर उसे स्पर्श करती है, तब उसे ऐसा लगता है कि सचमुच यह किसान सुखी है। अतः वह किसान को लेकर राजधानी पहुँचती है और महामात्य से कहती है कि यह सुखी व्यक्ति है। किसान का बाहरी रूप देखकर महामात्य को ऐसा लगता है कि यह बेडौल बदशक्ल जानवर है। तब गुप्तचर कहती है कि यह जानवर नहीं, मनुष्य है।यह पूर्ण सुखी है।[21] इसमें संदेह नहीं कि यह छीतर हलवाला सचमुच सुखी है, लेकिन अचरज की बात यह है कि यह पूर्ण सुखी होकर भी उसके पास कुरता नहीं है। जब उसके पास कुरता ही नहीं, तो सम्राट को कुछ भी पहनाना असंभव है। इतने में नेपथ्य में दूसरे कमरे में जोर से रोना-धोना शुरू होता है। सम्राट की मृत्यु का संकेत मिल जाता है। यहाँ सुखी व्यक्ति के कुरते की कहानी समाप्त होती है।

इस लोक-कथा के माध्यम से नाटककार ने यह दर्शाया है कि बड़े-बड़े राजनीतिक पदाधिकारी, बड़े-बड़े व्यापारी कभी सुखी नहीं होते, बल्कि जिसके पास कुरता भी नहीं, ऐसा एक श्रमजीवी किसान इस धरती पर सुखी कहा जा सकता है। नाटककार के ये प्रगतिवादी विचार निश्चय ही महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें लघु मानव का अंकन स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

ए. <u>कबीर की जीवन कहानी</u> :-इकतारे की आँख में मणि मधुकर ने कबीर के जीवन को केवल पृष्ठभूमि के रूप में ही लिया है और तत्कालीन लोक-जीवन को प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत किया है। नाटक के प्रारंभ में मणि मधुकर ने कबीर कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियों पर प्रकाश डाला है और तत्पश्चात कबीर के जीवन संबंधी कुछ धागे इस नाटक में कथावस्तु के रूप में पिरोएँ हैं। आलोचकों के अनुसार कबीर जुलाहा जाति के माने जाते हैं। "यह जुलाहा जाति किसी निम्न स्तर की भारतीय जाति का मुसलमानी रूप है।"[22] वास्तव में कबीर खुद को किसी भी जाति के नहीं मानते हैं। अपनी जाति के बारे में अपने पिता से पूछने पर उन्होंने

कहा था, "तू आदमी बनकर रह, यही बहुत है" अलबत्ता माँ धीरे से बोली थी - "तू एक विधवा ब्राह्मणी का जारज बेटा है। वो तुझे मेरे घर के सामने छोड़ गई थी और निपूती होने के कारण मैंने तुझे पाल लिया।"[23]

नाटककार ने यह लिखा है कि कबीर शादीशुदा थे। उनकी प्रथम पत्नी का नाम धनिया था, लेकिन धनिया से उनकी नहीं पटी। वे धनिया को बहुत चाहते थे, लेकिन उनकी चाहना का मेल धनिया की चाहना से हुआ नहीं। वह अपने पति कबीर को छलती रही, धोखा देती रही। इतना ही नहीं, एक दिन वह डोंडी पीटकर चली गयी। रिश्तों को कच्चे सूत से बाँधकर नहीं रखा जा सकता।[24] उसके एक लड़का भी था, जिसका नाम कमाल था। प्रस्तुत नाटक में मणि मधुकर ने यह लिखा है कि लोई नामक एक स्त्री कबीर के पास रहती थी। वह कबीर के व्यक्तित्व से प्रभावित थी, तथा स्वयं कुछ दार्शनिक विचार जानने वाली भी थी।

नाटककार ने कबीर की जीवनी के बारे में यह भी लिखा है कि काशी के कुछ लोग कवीर को वर्णव्यवस्था के विरोध, धर्मद्रोही और बदजुवान मानते थे और इसी कारण एक दिन कबीर के गले में पत्थर बांधकर उन्हें गंगा नदी में फेंक दिया जाता है, लेकिन उस समय नदी में होने वाले मल्लाह मछुआरे कबीर को पानी से बाहर निकालते हैं और उन्हें बचाते हैं।[25]नाटक में यह भी लिखा गया है कि अपने अंतिम दिनों में कबीर काशी छोड़कर मगहर गए और वहीं पर वृद्धावस्था में उनका देहावसान हुआ।

नाटककार ने कबीर के व्यक्तित्व पर भी कुछ प्रकाश डाला है। कबीर अनपढ़ थे, कवि नहीं थे, तुक्कड थे। रस, अलंकार, छन्द किसी का भी उन्हें ज्ञान नहीं था। वे इकतारा बजाते थे या नहीं इसी पर संदेह है।[26] हिन्दी में कबीर पर दो नाटक लिखे गए हैं - एक भीष्म साहनी का "कबीरा खड़ा बाजार में" और दो, मणि मधुकर का "इकतारे की आँख"। "इन नाटकों में हम हिन्दी नाटक की उसी नयी यात्रा का संकेत पाते हैं, जिसमें लोक- नाट्य-शैली और प्राचीन चरित्र का उपयोग, समकालीन यथार्थ की पहचान के लिए किया गया है।"[27]

ऐ. <u>सुजाता की खीर की कहानी</u> :- भगवान गौतम बुद्ध के जीवन से संबंधित अनेक लोक-कथाएँ प्रचलित हैं। उनमें एक प्रचलित कथा है - "सुजाता की खीर"। बुद्ध के समय उरुबेला प्रदेश में सेनानी नामक ग्राम में एक सम्पन्न गृहस्थ की "सुजाता" नामक पुत्री थी। उरुबेला एक अत्यंत उत्कृष्ट प्राकृतिक सौंदर्य से संपन्न मनोहारी स्थल था, जिसे आज "गया" शहर कहा जाता है। तपस्वी सिद्धार्थ ने कुछ समय इस सुन्दर प्राकृतिक क्षेत्र में तपस्या की। सुजाता एक ऐसी युवती थी, जिसने उरुबेला के वन में वनदेवी की पूजा-अर्चा कर कहा था कि "यदि मैं अच्छे घर में विवाहित होकर पहले गर्भ से ही पुत्र प्राप्त करूँगी, तो बहुत बड़ी पूजा करूँगी।"[28] उसकी वह मनोकामना पूरी हुई। वह जब ससुराल (वाराणसी) से सेनानी गांव लौटी तब वैशाखी पूर्णिमा के दिन सुबह ही उसने गाय के शुद्ध दूध से खीर पकाई। फिर उसे सोने की थाली में डालकर दूसरी सोने की थाली से उसे ढँक दिया और वह बरगद के चबूतरे की सफाई कराकर बरगद वृक्ष के नीचे पहुँचायी। उस समय बोधिसत्त्व (भगवान बुद्ध) भी प्रातःकाल ही उसे बरगद के पेड के नीचे ध्यानस्त बैठे थे। जब सुजाता की दासी पूर्णा ने उन्हें देखा तो उसे ऐसा लगा कि सुजाता की पूजा ग्रहण करने के लिए स्वयं देवता ही उस पेड के नीचे आ बैठे हैं। यह खबर उस दासी ने सुजाता को दी, तब सुजाता भी प्रसन्न हुई, और वह बरगद के वृक्ष के पास पहुँची। वहाँ ध्यानस्त बैठे बोधिसत्त्व को देखकर सुजाता बहुत खुश हुई और उसने खीर से लबालब भरी हुई थाली उस देवता के सम्मुख रखी और बरगद के पेड को परिक्रमा लगायी। तत्पश्चात सुजाता और उसकी दासी दोनों वनदेवता की स्तुति करने लगीं। उनकी आवाज से बोधिसत्त्व के ध्यानसुख में व्यत्यय आया और उन्होंने धीरे से उन दोनों को देखा। तत्पश्चात सुजाता ने बोधिसत्त्व को हृदय से परखा और प्रार्थना की, "आर्य मैंने आपको यह (खीर) प्रदान किया है, इसे ग्रहण कर यथारुचि पधारिए..... जैसे मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ, वैसे ही आपका भी पूर्ण हो।" फिर वह एक लाख मुद्रा मूल्य की सोने की उस थाली को पुराणी पत्तल की तरह छोड़कर चल पड़ी। कहा जाता है कि सुजाता भगवान बुद्ध की अस्सी वर्ष की आयु में सबसे महान भोजन परोसने

वाली महाभाग्यशालिनी महिला थी, जिसे खाकर संबुद्ध ने अनुत्तर और अपूर्व संबोधि को प्राप्त किया था। वाराणसी का यही प्रथम कुल था, जिसने संपूर्ण बौद्ध धर्म को स्वीकार किया और सुजाता एक ऐसी महिला थी, जिसने सर्वप्रथम तीनों वचनों से भगवान की शरण ग्रहण की। भगवान ने स्वयं कहा था कि - "भिक्खुओं। मेरी उपासिकाओं (श्राविकाओं) में प्रथम शरण पाने वालियों में सेनानी पुत्री सुजाता सर्वश्रेष्ठ है।"[30]

पुरातन उरूबेला को ही "बुद्ध गया" कहा जाता है। ऊपर संकेतित बरगद वृक्ष बोधिवृक्ष ही है। "बुद्ध गया" में भगवान बुद्ध का वज्रासन है, जिस पर बैठकर उन्होंने संबोधि प्राप्त की थी। यही पर परम पुनीत बोधिवृक्ष है, जिसके नीचे भगवान ने ध्यानस्त होकर अनुत्तर संबोधि को प्राप्त किया था। उस वृक्ष की सन्तान आज भी यहाँ पर है। संसार के कोने-कोने से तीर्थयात्री आकर इस पवित्र बोधिवृक्ष की पूजा करते हैं।[31] यहाँ विख्यात महाबोधि मन्दिर भी स्थित है।

"सुजाता की खीर" और "बोधिवृक्ष" की लोक-कथा को परिलक्षित करते हुए और इस मिथकीय कथा प्रसंग को तोड़-मरोड़कर नाटककार मणि मधुकर ने मुख्यतया आज की राजनीति पर करारा व्यंग्य किया है। यहाँ यह ध्यान में रखने की जरूरत है कि जहाँ "सुजाता की खीर" में सुजाता की त्याग भावना और उदात्त प्रार्थना निहित है, वहाँ मणि मधुकर ने **बोलो बोधिवृक्ष** नाटक में "सुजाता की खीर" को आज के राजकीय नेता और अन्य लोक कैसे बांटकर खाते हैं, इसका बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। अर्थात आज के नेता, अफसर आदि रिश्वत को बाँट-बाँटकर ही खाते हैं, इसीको ध्वनित किया है। बोधिवृक्ष के शब्दों में -

"बाँट के खाओ
छाँट के खाओ
फाँट के खाओ
लेकिन कभी किसी को ना डाँट के खाओ।"[32]

रिश्वतखोरी पर यह एक करारा व्यंग्य ही है।

ख· <u>लोक-जीवन-अभिव्यक्ति प्रयोग</u>

मणि मधुकर ने अपने नाटकों में लोक-कथाओं के माध्यम से लोक-जीवन को भी बड़े मार्मिक शब्दों में चित्रित किया है। उनके नाटकों में लोक-जीवन के विविध आयाम साकार हुए हैं।

लोक-जीवन की दृष्टि से उनका **दुलारीबाई** नाटक अपना विशेष महत्त्व रखता है। इस नाटक में नाटककार ने कुछ ऐसे पात्रों की सृष्टि की है, जो किसी भी गांव के लोक-जीवन के प्रतिनिधि पात्र कहे जा सकते हैं। प्रस्तुत नाटक में दुलारीबाई एक कंजूस तथा पैसे की लालची नारी है। कटोरीमल इत्र का व्यापार करने वाला एक लोभी व्यक्ति है। ननकू मोची "मोची" का धंधा करने वाला एक निम्न वर्ग का व्यक्ति है, लेकिन साथ ही साथ वह शायरों का नक्काल भी है। कल्लू भांड एक बहुरूपिया के रूप में चित्रित किया गया है, जो दुलारीबाई का प्रेमी है और बाद में उसका पति भी बन जाता है। चिमना मांझी एक निम्न वर्ग का "मांझी" है, जो दुलारीबाई का आंतरिक रूप से प्रेमी है। पटेल गांव का सरपंच है और गंगाराम तथा फर्जीलाल उसके चमचे हैं। गंगाराम शादी-शुदा नहीं है। अतः वो शादी की इच्छा पटेल के पास व्यक्त करता है। फिर भी उसकी शादी नहीं हो पाती। फर्जीलाल गांव का एक ऐसा आदमी है, जिसका धंधा "झूठ-कपट" है। वह गांजे की चिलम पीता है, भंग छानता है और शराब भी पीता है। वह पेशेवर गवाह है।[33] अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए वह दुलारीबाई का आर्थिक शोषण भी करता है।

उपयुक्त पात्रों के माध्यम से लोक-जीवन का चित्र इस प्रकार साकार हुआ है -

अ· <u>शादी, बच्चे और औरत</u> :- दुलारीबाई नाटक में मणि मधुकर ने पटेल और गंगाराम के संवादों के माध्यम से देहाती लोगों की शादी, बच्चे और औरत के बारे में पटेल के अनुभवजन्य विचारों को व्यक्त किया है। किसी भी अविवाहित व्यक्ति के मन में अपने विवाह के बारे में विचार आ जाते हैं। गंगाराम एक अविवाहित देहाती युवक है। वह विवाह करना चाहता है। उसे एक लुगाई की आवश्यकता होती

है। इस संदर्भ में पटेल अपने अनुभवजन्य विचार प्रस्तुत करते हुए कहता है कि यद्यपि शास्त्र के अनुसार विवाह का उद्देश्य संतान-प्राप्ति और वंशवृद्धि है, लेकिन असल में कुछ विचित्र अनुभव ही शादी के बाद आ जाते हैं। शादी के बाद बच्चे पैदा होते हैं। पटेलजी के पाँच बच्चे हैं। इन बच्चों के कारण पटेल तंग आ जाता है। ये बच्चे बड़ों का जीना मुश्किल कर देते हैं। हरएक बच्चे को हरदम कोई न कोई तकलीफ रहती है; किसी को दस्त लग रहे हैं, तो किसी को बुखार है, किसी को चेचक निकल आयी है, तो किसी ने सीढ़ियों से गिरकर अपनी टांग तोड़ ली है, तो किसी को खासी लग गई है। इसी कारण पटेल ने अपनी परेशानी गंगाराम के सम्मुख व्यक्त की है। बच्चों के बारे में देहातों में यह धारणा रही है कि बच्चे कौम की दौलत होते हैं। लेकिन दुलारीबाई नाटक में यह बताया गया है कि अगर ऐसा है तो अपने मुल्क की गिनती दुनिया के सबसे धनवान देशों में होनी चाहिए।[34]

शादी के बारे में पटेल के विचार भोगे हुए यथार्थ को ही चित्रित करते हैं। पटेल गंगाराम से स्पष्ट रूप से कहता है - "खुदकुशी न करना चाहो तो शादी कर लो। जीती-जागती मौत को दावत देना है।"[35]

शादीशुदा सलीकेदार औरत का हाल पटेल ने बड़े ही मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है। जो धर्मपत्नी कही जाती है वह आज कभी खाना नहीं बनाती है और जिस दिन बनाती है, उस दिन बार-बार पति से ही पूछती रहती है कि खीर में कितना नमक डालना चाहिए और तरकारी में कितनी शक्कर पड़नी चाहिए। इतना ही नहीं यह सलीकेदार औरत अनेक खुराफातें निकालती हैं। इसी कारण आज के पति को बारह महीने रजाई ओढकर ही अपना जीवन बीताना पड़ता है।[36]

उ. <u>पंचायत न्याय-व्यवस्था</u> :- नाटककार मणि मधुकर ने दुलारीबाई नाटक में पंचायत राज-व्यवस्था की ओर भी संकेत किया है। गाँव के मन्दिर के सामने रखे गए पटेल के जूतों की चोरी हो जाती है। स्वयं दुलारीबाई ही अपने पुराने जूते वहाँ रखकर पटेल के नये चमचमाते जूते पहनकर चली जाती है। गंगाराम दुलारीबाई को पकड़ता है और सरपंच पटेल के सम्मुख उपस्थित करता है। तब पटेल अपना पंचायती न्याय का फैसला इस प्रकार सुनाता है -

पट्रेल : गंगाराम, तुमने पता लगाया कि जब से यह मंदिर बना है, इसके सामने से कितने जूते चोरी गए हैं ?

गंगाराम : सब मालूम कर लिया मैंने। मंदिर बण्या था तीन बरस पहले- उस बखत से आज तक एक सौ अट्ठाईस जूतों की जोडियाँ चोरी हो गई हैं।

पट्रेल : चोरी में गए तमाम जूतों को दुलारी के खाते में लिखो, उनकी कीमत निकालो और ऊपर से पाँच सौ रूपया जुरमाना जोड़ दो।

गंगाराम : अच्छा, अच्छा, यह हुई न मुद्दे की बात। अब तो पंचायत का खजाना खाली नहीं होगा। हां, करीब दो हजार रूपये बणते हैं, पटेल जी। छोरों के पढ़णे के लिए पाट्ठशाला बण जाएगी।

पट्रेल : कान खोलकर सुन लो, दुलारीबाई। कल शाम तक तुम्हें दो हजार रूपैये पंचायत में जमा करा देने होंगे। इसमें चूक हुई तो मुझसे बुरा कोई न होगा।"[37]

फर्जीलाल झूठी गवाही देने वाला व्यक्ति है और वह दुलारीबाई पर चोरी का इल्जाम लगाता है कि उसने तीन बार उसके घर में चोरी की है। इसमें संदेह नहीं कि दुलारीबाई ने पटेल के जूतों की अवश्य चोरी की थी। इस अपराध के कारण वह इस समय भी चोर समझी जाती है और पटेल उसे जुर्माने के रूप में पाचसौ रूपये पंचायत में जमा करने तथा हर्जाने के रूप में पचास रूपये फर्जीलाल को देने का आदेश देता है। यह न्यायदान आज के लोक-पंचायत राज का ही एक नमूना है।

आ. <u>नारी शोषण</u> :- केवल नगरों में ही नारी का शोषण होता है ऐसी बात नही, देहातों में भी नारी का शोषण करने वाले लोग कम नहीं हैं। दुलारीबाई नाटक का कटोरीमल व्यापारी इत्र बेचने के बहाने दुलारीबाई से पचास रूपये इनाम के रूप में लेकर शोषण करना चाहता है। लेकिन वह उसमें कामयाब नहीं होता। गांव का सरपंच पटेल उसे दो बार जुरमाना कर कुल 2500 रूपये पंचायत के खजाने

में जमा करने का आदेश देता है और इस प्रकार उसका आर्थिक शोषण करता है। दुलारीबाई यह रकम पंचायत में जमा करती है ही और हर्जाने के रूप में फर्जीलाल को भी पचास रूपए देती है। इतना ही नहीं, फर्जीलाल ऐसा स्वार्थी व्यक्ति है कि वह स्वयं अपना माथा पत्थर से फोड़ता है और दुलारीबाई के द्वारा फेंके गए जूतों के थैले की वजह से ही यह जख्म हुआ है, ऐसा दुलारीबाई के पास जाकर कहता है। उससे छः महीने का दवा-दारू का खर्च माँगता है। लेकिन दुलारीबाई सिर्फ सौ रूपए देकर उसके सौदेबाजी को मिटा देती है। इस प्रकार गांव वाले दुलारीबाई का आर्थिक शोषण करते रहते हैं।

इ. <u>कर्जदारी</u> :- देहातों में मुख्यतया श्रमजीवी लोग कर्जदार दिखाई देते हैं। उन्हें कर्ज देने वाले कुछ धनिक लोग भी होते हैं। दुलारीबाई को अपने बाप-दादों की जायदाद मिलती है, जिसका इस्तेमाल वह गांव के लोगों को कर्ज देने के लिए करती है और वह ब्याज भी वसूल करती है। चिमना मांझी भी दुलारीबाई से प्रासंगिक रूप में कुछ कर्ज लेता है और ब्याज के साथ वह रकम चुका देता है। लेकिन कुछ कर्जदार ऐसे होते हैं कि जो दुलारीबाई से कर्ज लेते समय दुलारीबाई के सामने गिड़गिड़ाते भी हैं, लेकिन लिया हुआ कर्ज ब्याज के साथ वापस लौटाने में देर करते हैं। इस संदर्भ में दुलारीबाई के विचार देहात की कर्जदारी पर विदारक प्रकाश डालते हैं। दुलारीबाई के शब्दों में - "लोगों को जब कर्ज की जरूरत पड़ती है - तब तो गिड़गिड़ाते हुए चले आते हैं मेरे पास - लेकिन फिर...लौटाने के नाम पर शक्कल तक नहीं दिखलाना चाहते। अरे, मैं हूँ, दुलारीबाई - कोई मरके भी मेरा पैसा हजम नहीं कर सकता।"[38]

जब कल्लू बहुरूपिया के रूप में आता है और दुलारीबाई की तिजोरी के बारे में चर्चा करता है, तब दुलारीबाई स्पष्ट रूप से कहती है कि वह मुर्दे के कफन से भी उधार का पैसा वसूल करने वाली दुलारीबाई है।[39]

ओ. <u>अंधःश्रद्धा</u> :- मणि मधुकर ने दुलारीबाई नाटक में देहाती लोगों में फैली हुई अंधश्रद्धाओं पर भी प्रकाश डाला है। कल्लू भांड बहुरूपिया बनकर दुलारीबाई

के पास आ जाता है, तब वह परलोक-धाम के बारे में बताता है कि दुलारीबाई के पिता चोंचकतरनीलाल अब परलोक में ही रहते हैं। उनके पास न कुर्ता है, न धोती है, वे नंगे ही रहते हैं। उन्हें कंजूसी के कारण ही सजा मिली है। परलोक-धामों की सजा के बारे में कहा गया है कि चोंचकतरनीलाल के तन में एक लाख चौरासी हजार सुइयाँ चुभो दी गयी है और हुक्म दिया गया है कि एक दिन में एक सुई निकाली जाए। "जो इस दुनिया में कंजूसी करते हैं, परलोक में ऐसा ही दंड भरते हैं।"[40]

इस नाटक में यह भी दर्शाया गया है कि भगवान की कृपा से मनुष्य को कुछ लाभ हो जाता है। वास्तव में भगवान भावना का भूखा होता है। लेकिन भगवान को एक पैसा चढ़ाया जाता है और उससे कृपा की अभिलाषा की जाती है। इस संदर्भ में दुलारीबाई स्वयं कहती है कि एक पैसे से ही भगवान इतने प्रसन्न हो गए कि उन्होंने एकदम नये जूते दुलारीबाई के लिए ही भेज दिए। वास्तव में ये जूते पटेल के ही होते हैं।

तत्पश्चात इस नाटक में भविष्यवाणी के प्रति भी दुलारीबाई का विश्वास व्यक्त किया गया है। कल्लू भांड बहुरूपिया के रूप में उसे भविष्य बताता है कि उसका विवाह किसी राजा के साथ होने वाला है। साथ ही साथ इत्र के सौदे में दुलारीबाई को दो हजार आठसौ रुपये का लाभ-योग है। दुलारीबाई बाबा की इस वाणी पर भरोसा रखती है और शादी का सपना देखती है। कल्लू भांड राजा के वेश में उसके साथ शादी करता है और थोडी ही देर में रहस्य खुल जाता है कि उसका विवाह राजा से नहीं; बल्कि कल्लू भांड के साथ हुआ है। इत्र के सौदे में भी उसे मुनाफा नहीं होता, बल्कि इत्र की शीशियाँ फूटकर उसे व्यापार में घाटा ही हो जाता है। इस प्रकार नाटककार ने देहात में फैली हुई अंधश्रद्धाओं पर विदारक प्रकाश डाला है।

प्रस्तुत नाटक में महाप्रेत की संकल्पना पर भी प्रकाश डाला गया है। आधी रात को यह महाप्रेत अवतीर्ण होता है और व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करता है। इस

महाप्रेत को प्रसन्न करने पर व्यक्ति की कामना पूरी हो जाती है। इस प्रकार नाटककार ने महाप्रेत के बारे में फैली हुई अंधश्रद्धा को व्यक्त कर लोक-जीवन का परिचय दिया है।[41]

मणि मधुकर ने "इकतारे की आँख" नाटक में महाभैरवी के भक्तों की अंधश्रद्धा पर प्रकाश डाला है। नाटककार ने यह दिखाया है कि महाभैरवी एक ऐसी देवी है, जो मंत्रविद्या में पारंगत है। वह उच्चाटन मंत्र, मोहिनी मंत्र आदि के द्वारा भक्तों की मनोकामना पूर्ण करती है तथा भक्तों के दुश्मनों को मूठ चलाकर विनष्ट कर देती है। एक भक्त स्त्री लंपट है। उसकी पत्नी सुन्दर थी, लेकिन अब बुढ़ापे में वह उसे शूर्पणखा जैसी लगती है। अतः अपनी पत्नी को त्यागने के लिए वह उच्चाटन मंत्र की अपेक्षा करता है और भैरवी के उच्चाटन मंत्र के द्वारा सुन्दरियों का उपभोग लेना चाहता है।[42] भक्त दो भी स्त्री लंपट है। वह बुढ़ापे में मोती बाई पर लट्टू हो जाता है और उसका उपभोग लेना चाहता है। लेकिन उसका बड़ा लड़का उसके रास्ते का रोड़ा बन जाता है, जिसके कारण आखिर में भक्त दो उस रोड़े को हटाने के लिए महाभैरवी से प्रार्थना करता है कि वह उस पर मूठ चलाये।[43]

वास्तव में नाटककार ने यह दर्शाया है कि तंत्र साधना करने वाले भक्त सही अर्थ में भक्त नहीं, बल्कि भोगी है, विषय लंपट है।

इसी नाटक में रैदास की बीवी ज्यानकी को भगाने वाले जोगी-एक और जोगी-दो को जब दूसरा और तीसरा व्यक्ति प्रणाम करता है तो ये जोगी उन्हें आशीर्वाद देने के बदले उन पर थूकते हैं और आश्चर्य की बात यह कि दूसरा तथा तीसरा व्यक्ति उस थूक को गंगाजल से भी पवित्र मानकर अपनी-अपनी झोलियों में बटोरते हैं। निम्नलिखित संवाद देखिए -

दूसरा : महाराज, प्रणाम।

तीसरा : सन्तों की जय हो।

जोगी-एक: नाश होगा, नाश होगा। थूः थूः थूः।

जोगी-दो : सर्वनाश। थूः थूः थूः।

(दूसरा और तीसरा उनके थूक को अपनी-अपनी झोलियों में बटोरते हैं।)

दूसरा : यहां थूकिए, महाराज।

तीसरा : यहां-यहाँ...आपका थूक तो गंगाजल से भी पवित्र है।[44]

यह उदाहरण सामान्य जनता की अंधश्रद्धा को भली-भाँति स्पष्ट करता है।

ई. गाँव की समस्याएँ :- मणि मधुकर ने दुलारीबाई नाटक में गाँव कुछ समस्याओं की ओर संकेत किया है। गाँव की सबसे बड़ी समस्या पीने के पानी की है। लोगों को पीने के लिए पानी भी नहीं मिलता है। गाँव में सिर्फ एक कुआँ है, लेकिन लोगों की जरूरत पूरी होने के लिए कम से कम तीन कुओं की जरूरत होती है। छोरों के पढ़ने के लिए पाठशाला की भी जरूरत है। बाहर से आने वाले मेहमानों के लिए एक धर्मशाला भी आवश्यक है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए काफी रुपये की जरूरत होती है। लेकिन आज पंचायत का खजाना भी खाली पड़ा है।[45] नाटककार ने यह दर्शाने की कोशिश की है कि आजकल देहातों में पैसे के अभाव में अनेक काम नहीं बन पा रहे हैं और गाँव की समस्याएँ दिन-ब-दिन बढ़ती ही रही हैं।

ए. स्त्री लंपट साधु और जोगी :- इकतारे की आँख नाटक में मणि मधुकर ने कबीर कालीन समाज को परिलक्षित करते हुए वहाँ की स्थिति के साथ आज की सामाजिक स्थिति की ओर संकेत किया है। नाटक में प्रयुक्त बाबा लछमनदास के बारे में नाटककार ने यह लिखा है कि वह पहले आखाड़े में पहलवानी करने वाला लछुआ था और आज साधु का बाणा धारण कर बाबा लछमनदास बन गया है और उसने संपतसेठ की औरत को चेली मूंड़ लिया है। उसके साथ उसके अवैध संबंध हैं।[46]

प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने यह दर्शाया है कि संत रैदास की पत्नी ज्यानकी सुन्दर थी और उसीको ये जोगी पकड़ लेते हैं। उसे अपने निवासस्थान पर ले जाते हैं और उसके साथ अत्याचार तथा बलात्कार करते हैं। स्त्री के संदर्भ में ये जोगी ऐसी बातें करते हैं कि सुन्दर स्त्री बदचलन होती है और समाज का आचरण बिगाड़ती है और जोगियों पर डोरे डालती हैं। निम्नलिखित वार्तालाप दृष्टव्य है-

"दूसरा : सुन्दर औरतें बदचलन होती हैं।

जोगी-एक : समाज का आचरण बिगाड़ती हैं....

जोगी-दो : हमपर डोरे डालती हैं।"[47]

उपर्युक्त वार्तालाप से यह स्पष्ट है कि ये जोगी, जोगी नहीं, बल्कि भोगी हैं, और उनकी आदत है उलटे चोर कोतवाल को डांटे।

ऊ. कोतवाल का अजब न्याय :- मणि मधुकर ने इकतारे की आँख नाटक में काशी के कोतवाल की स्त्री लंपटता पर व्यंग्य किया है और साथ ही साथ कोतवाल के अजब न्याय पर भी प्रकाश डाला है। काशी के महंगू दरजी के मुँह से नाटककार ने यह दर्शाया है कि सरकारी फीलखाने ने दर्जियों, रंगरेजों, भड़भूंजों और नाइयों के मुहल्ले के लोगों पर एक हाथी को खिलाने-पिलाने की जिम्मेदारी डाल रखी है। वास्तव में ये लोग बहुत गरीब हैं। हाथी का जिम्मा नहीं उठा सकते। हाथी को खिलाते-खिलाते उनके सारे काम-धंधे चौपट हो गये हैं, वे बरबाद हो गए हैं। इसी कारण वे कोतवाल से प्रार्थना करते हैं कि उन्हें इस हाथी से छुटकारा मिल जाए। लेकिन कोतवाल उनकी शिकायत सुनकर उन्हें दो हाथियों की देखभाल का जिम्मा सौंप देता है और महंगू दरजी को पचास कोड़े लगाने का हुक्म करता है।

कोतवाल जिस रास्ते से गुजरते हैं, उस रास्ते में एक बच्चा उसकी मिट्टी गीली करता है। उस समय एक सिपाही स्वयं एक ही बार में उसका इन्साफ करता है और इस पर कोतवाल कहता है कि तुम्हारी तरक्की के बारे में जरूर सोचा जाएगा।[48]

अः. चापलूसी :- मणि मधुकर ने अपने नाटकों में यह दर्शाया है कि कुछ लोग राजा या किसी अधिकारी की चापलूसी करने में ही अपने को धन्य समझते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि यह लोग अपने पद को सुरक्षित रखना चाहते हैं। मणि मधुकर के दुलारीबाई नाटक में कल्लू भांड जब राजा के वेश में मंच पर आता है, तब राजा और गांव के पटेल के बीच एक ऐसा वार्तालाप रखा गया है जिससे यह दिखाई देता है कि राजा पटेल को डाँटता है और पटेल राजा की चापलूसी करता है। यथा -

कल्लू : (रौब से) पटेल।

पटेल : (गिड़गिड़ा कर) अन्नदाता।

कल्लू : तुम इतनी देर तक कहां थे ?

पटेल : अन्नदाता, मैं गांव वालों के सामने आपके महान गुणों की चर्चा कर रहा था कि मुझ पता लगा -

कल्लू : तुमने मेरे गुणों की चर्चा अनपढ़, गंवार गांव वालों के सामने क्यों की ?

पटेल : गलती हो गई, अन्नदाता। आगे से नहीं करूंगा।

कल्लू : तुमने सिर पर इतना बड़ा पग्गड़ क्यों बांध रखा है ?

पटेल : भूल हुई, अन्नदाता। अब नहीं पहनूंगा। (पग्गड उतार देता है।)

कल्लू : और यह कुर्ता····यह धोती····क्या मतलब है इनका? कुत्ते की मौत मरना चाहते हो ?

पटेल : इन्हें भी उतार देता हूं अन्नदाता। आपका दास हूं, क्षमा करें।"[49]

मणि मधुकर ने इकतारे की आँख नाटक में भी काशी के कोतवाल की कवियों द्वारा की गयी चापलूसी का बड़ा ही सुन्दर उदाहरण दिया है। सरकार से पुरस्कार पाने का यह तरीका आज की "पुरस्कार नीति" पर व्यंग्य है। यथा -

"कवि एक : कोतवालजी हिमालय हैं।

कवि दो : हिन्द महासागर हैं।

कवि एक : बड़े-बड़े गायक उनकी कीर्ति गाते हैं·····

कवि दो : वादक पांव दबाते हैं।

कवि एक : नर्तक तलुवे सहलाते हैं····

कवि दो : चित्रकार उनकी मूंछों का कलात्मक चित्रण करते हैं····

कवि एक : और कवि ?

कवि दो : उनसे नाना भांति के पुरस्कार पाते हैं।"[50]

अं· <u>काशी निवासी</u> :- मणि मधुकर ने इकतारे की आँख नाटक में काशी के निवासियों पर करारा व्यंग्य किया है। जिस काशी को पवित्र माना जाता है, उस काशी में कितनी अपवित्रता है, वहाँ के निवासी कितने विचित्र हैं, उनके बाह्य और आंतरिक रूप में कितना अंतर है, उस पर प्रकाश डाला है। काशी में धनिकों का ठाट-बाट चलता है, काशी में पंडित मुल्लाओं का राजपाट चलता है। काशी में ढोंगी और छल-कपटी लोग दिखाई पड़ते हैं, काशी में धर्म की जगह अधर्म है, अनाचार है। काशी में कोतवाल, साहुकार तथा राजा का राज चलता है। प्रजाजन व्यथा के कारण गूँगे बन गए हैं। काशी में तंतर, मंतर, जंतर, वशीकरण चलते हैं। काशी में विवेक नहीं रहा है। काशी में संत-असंत को नहीं पहचाना जा सकता है।[51]

इकतारे की आँख नाटक के उत्तरार्ध में भी काशी के विचित्र व्यवहार पर तीखा व्यंग्य किया गया है। नाटककार ने दर्शाया है कि काशी में जोगी अपने हाथों में बरछी, भाला, तलवार लेकर चलते हैं, क्षणार्ध में मार-काट कर डालते हैं आर इसी प्रकार जगत का उद्धार करते हैं। वहाँ का राजा रंगमहल में सोता रहता है, धर्म-अधर्म को एक ही मानता है। बनिये और साहुकार द्वारा साधारण जन शोषण की चक्की में पीसे जाते हैं और उनके आर्थिक शोषण से प्राप्त धन दानी रूप में वे बांट देते हैं और यश की जय-जयकार पाते हैं। इतना ही नहीं, वे सौ घरबार उजाड़ देते हैं और चार मन्दिर-मसजिद बनवाते हैं।[52]

इस प्रकार नाटककार ने काशी के निवासी और उनके व्यवहार पर मार्मिक टीका-टिप्पणी की है।

ऐ· <u>मुल्ला का करिश्मा</u> :- नाटककार ने इकतारे की आँख में मुल्लाओं पर व्यंग्य किया है। वास्तव में जो मुल्ला त्यागी, धार्मिक तथा उपदेशक होते हैं वे आज एक धंधे वाले के रूप में दिखाई पड़ते हैं। प्रस्तुत नाटक में यह दिखलाया गया है कि एक व्यक्ति अंधा न होकर उसे मुल्ला अंधा बनाता है और सबके सामने यह करिश्मा दिखलाने का प्रयास करता है कि मुल्ला के कारण ही उस व्यक्ति की आँखों में रोशनी आ गयी है। अन्य दो अंधे और हैं और उन्हें भी रोशनी दी जाएगी, ऐसा

वह दावा करता है। इतना ही नहीं, इस समय मुल्ला कबीर के खिलाफ बोलता है और कहता है कि यह कबीर जो कुछ बोलता है, वे शैतान के ही बोल हैं। कबीर इस्लाम को गालियाँ देता है। उस समय कबीर कहते हैं कि मैं भी ऐसा करिश्मा दिखला सकता हूँ जिससे ये अंधे आँखें खोलकर अरबी घोड़ों की तरह दौड़ने लगेंगे। रैदास के कान में कुछ कहकर कबीर एकदम जोर से चिल्लाते हैं - "सांप, सांप, भागो, भागो।" इस पर मुल्ला हड़बड़ा जाता है। अंधे घबराकर आँखे खोल देते हैं। अंधे और मुल्ला भाग जाते हैं। मुल्ला की इस नीति पर कबीर की टीका-टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है। वे कहते हैं - "काशी के लोगों, चारों तरफ यही ढोंग चल रहा है। पंडित-जोतसी बीमारों को अच्छा कर रहे हैं। मुल्ला अन्धों को आँखें दे रहे हैं। असल में, उन्हीं के सिखाए-पढ़ाए, लोग बीमार और अन्धे बनते हैं और फिर चमत्कार की डोंडी पिटवाई जाती है।"[53]

मणि मधुकर ने इस नाटक में साधु-संतों के साथ ही साथ मुल्लाओं की पोल भी खोल दी है।

ओ. <u>धर्म के नाम पर बक-बक</u> :- मणि मधुकर ने इकतारे की आँख नाटक में धर्म के नाम पर चलती आयी बक-बक की ओर भी संकेत किया है। पंडित, मुल्ला दोनों ही अपने-अपने धर्म को श्रेष्ठ समझते हैं और सच्चे मानव धर्म से वंचित हो जाते हैं। सच्चा धर्म मानव-मानव में भेदभाव नहीं करता है। पंडित का कहना है कि अब घोर कलियुग आ गया है और सनातन धर्म पर आघात हो रहे हैं। सनातन धर्म का मर्म वेद-पुराण है। जात-पाँत और समाज में फैले हुए भेदभाव वेद-पुराण ही दूर कर सकते हैं। पंडित का कहना है, सब समस्याओं का समाधान वेद-पुराण है। सभी को कर्मों का फल भोगना पड़ता है और वर्ण-व्यवस्था तो ईश्वर की व्यवस्था है। कबीर यह भी प्रश्न करते हैं कि क्या इस्लाम का भी यही कहना है, तब मुल्ला कबीर से तमीज से बात करने के लिए कहता है। उस पर कबीर यह प्रश्न करता है कि ग़रीब कब तक पीसता रहेगा। मजहब के नाम पर मुफ्तखोरों की पलटण को हम कब तक पोसते रहेंगे। उस समय भीड़ कहती है कि बात बिलकुल साफ होनी चाहिए। उस पर मुल्ला कहता है कि इस्लाम की बे-इज्जती नहीं करनी चाहिए। तब कबीर

यह कहते हैं कि राम-राम और अल्लाह-अल्लाह का जप करने से कुछ नहीं होगा। इस संदर्भ में कबीर के एक प्रसिद्ध पद का संकेत नाटककार ने कर दिया है और कहा है कि धर्म के नाम पर की जाने वाली बक-बक व्यर्थ है। मनुष्य को धर्म के नाम पर चलने वाले आडम्बर को हटाना चाहिए और स्वयं क्रियाशील बनना चाहिए। निम्नलिखित वार्तालाप देखिए -

"कबीर	:	....राम-राम और अल्ला-अल्ला का जाप करने से कुछ नहीं होगा। क्या गुड़-गुड़ बोलते रहने से मुँह मीठा हो जाता है?
भीड़	:	नहीं होता है।
लोई	:	आग-आग कहने से कोई जल जाता है क्या ?
भीड़	:	नहीं।
रैदास	:	पानी-पानी पुकारने से क्या किसी की प्यास बुझ जाती है?
भीड़	:	कभी नहीं।
पंडित	:	बाप रे, यह तो अधर्मियों का जमघटा है....
मुल्ला	:	दिन-दहाडे इस्लाम की वेइज्जती। मैं एक-एक को सबक सिखाकर छोडूंगा।
रैदास	:	आपको भी तो आज कुछ सबक मिला होगा।"[54]

उपर्युक्त उद्धरण में कबीर का समाज सुधारक रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है। पंडित तथा मुल्ला लोग ईश्वर और अल्ला का नाम लेकर आम जनता का शोषण करते रहते हैं। कबीर, लोई तथा रैदास आम जनता की भीड़ को समझाते हैं कि जिस प्रकार गुड-गुड बोलने से मुँह मीठा नहीं होता, आग-आग कहने से कोई जल नहीं जाता, पानी-पानी पुकारने से किसी की प्यास नहीं बुझती, उसीप्रकार राम-राम या अल्ला-अल्ला कहने से भी कुछ नहीं होता। यहाँ कबीर ने पंडित तथा मुल्ला को सवक सिखाया है।

पंडितों के व्यर्थ वाद-विवाद को कबीर ने झूठा ठहराया है। कबीर के पद की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य है -

"पंडित बाद बदे सो झूठा।
राम कहें दुनिया गति पावै खांड़ कहें मुख मीठा।।
पावक कहें पांव जे दाझे जल कहें त्रिखा बुझाई।
भोजन कहें भूख जे भाजे तो सब कोई तिरि जाई।।"[55]

ग. लोक-गीत प्रणाली प्रयोग

मणि मधुकर ने दुलारीबाई और इकतारे की आँख नाटक में लोक-गीतों का काफी प्रयोग किया है। उनके अन्य नाटकों - रसगंधर्व, बुलबुल सराय, और बोलो बोधिवृक्ष में भी कुछ मात्रा में लोक-गीतों का प्रयोग हुआ है। नाटककार की यह गीत संरचना सोद्देश्य हैं।

अ. मंगलाचरण का विडम्बनात्मक प्रयोग :- नाटककार मणि मधुकर ने दुलारी-बाई, इकतारे की आँख और बोलो बोधिवृक्ष में संस्कृत नाट्यशैली के मंगलाचरण की नयी व्याख्या करके आज की राजनीति पर कठोर व्यंग्य किया है। ब्रह्मा,विष्णु, महेश, गणपति आदि प्राचीन मिथकों को तोड़-मरोड़कर आज के राजनेताओं की ढोंगबाजी पर व्यंग्य किया है। इकतारे की आँख नाटक में नाटककार ने गणपति वंदना के स्थान पर ठाकुर साहब की वंदना पर जोर दिया है। वास्तव में इस गणेश वंदना में तत्कालीन जनता दल के नेता महामंत्री वी·पी·सिंग पर ही सांकेतिक शैली में व्यंग्य किया गया है। इस वंदना में "आधा ठाकुर आधा गणेश" का समावेश किया गया है। प्रस्तुत गणेश वंदना में आज के राजनेताओं पर करारा व्यंग्य किया है। आज के नेताओं का पेट गणपति के पेट जैसा स्थूल होता है। वे लड्डू खाते हैं। लड्डूओं में पिस्ता, मेवा, बादाम ज्यादा होता है। इन लड्डूओं को खाकर वे दिन भर देश सेवा करते हैं और रात को वे वेश्यागमन कर जनउद्धार का स्वप्न देखते रहते हैं। निम्नलिखित गीत की पंक्तिया दृष्टव्य है -

गायक मंडली : आओ, पहले हम विनायकजी की वन्दना करें
उनके मोटे-थुलथुल पेट के ऊपर लड्डू धरें
गायक एक : लड्डू में पिस्ता हो खूब, बादाम और मेवा

गायक मंडली : खाकर ठाकुर करेंगे दिन भर देश की सेवा

गायक दो : रात को कोठे के मुजरे में बैठे टांग पसार के
बाई के संग सोकर देखें सपने जन-उद्धार के[56]

आ. <u>शेर-शायरी प्रयोग</u> :- दुलारीबाई नाटक में मणि मधुकर ने शेर-शायरी का अच्छा प्रयोग किया है। यह प्रयोग मुख्यतया पुतला एक और पुतला दो सूत्रधार तथा ननकू मोची के माध्यम से किया गया है। नाटक के प्रारंभ में पुतले शेर में यह बात स्पष्ट करते हैं कि आज लोग व्यर्थ ही बकवास करते हैं और अपने ही नशे में चूर रहते हैं और उनको होश नहीं होते हैं। आज लोगों के पांव जमीं पर नहीं पडते हैं। अपनी लडखडाती जुबां में वे बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, बड़े बड़े खयाल रचते हैं और स्वर्गीय सुख देखना चाहते हैं। ऐसे लोगों पर नाटककार ने व्यंग्य किया है। शेर की निम्नलिखित दो पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

"पुतला, एक : पांव के नीचे जमीं की क्या जरूरत, दोस्तों।

पुतला, दो : हम खयालों में उड़ें और आसमां पैदा करें।"[57]

नाटककार ने आज के मनमौजी और स्वच्छंदी लोगों पर इस शेर के द्वारा व्यंग्य कसा है।

प्रस्तुत नाटक में मणि मधुकर ने देहाती लोक-नाट्य मंडली की व्यथा पर भी शेर के माध्यम से प्रकाश डाला है। वास्तव में लोकरंगकर्मी वफादार होते हैं, लेकिन उन्हें उनकी वफादारी की ही सजा मिल जाती है। उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं रहती है। जिन्दगी में वे हमेशा पिटते रहते हैं और जब दर्शक किसी लोकनाट्य को पसंद नहीं करते हैं, तब इन रंगकर्मियों को मार खानी पड़ती है। शेर की निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

"वैसे तो जिन्दगी में सदा पिटते रहे हम,
नाटक में उनसे मार ही खाएं तो क्या करें।"[58]

नाटक का एक पात्र ननकू मोची वास्तव में शायरों का नक्काल है। उसने अपने शेरों के माध्यम से दुलारीबाई के चरित्र पर प्रकाश डाला है। दुलारीबाई अपने पुश्तैनी जूते पहनकर जब चलती है, तब उसके जूतों की जो खटर-पटर आवाज निकलती है, और चलते समय वह ऐसी चलती है कि राजा-महाराजाओं की भी तबीयत मचलने लगती है। ननकू मोची का निम्नलिखित शेर दृष्टव्य है -

"तेरे कदमों की आहट फट्ट से पहचान लेते है,
हसीना, तेरी बांकी चाल पे हम जान देते हैं।"[59]

इ. <u>पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए प्रयोग</u> :- मणि मधुकर ने अपने नाटकों में लोक-गीतों के विविध प्रयोग किए हैं, जो बड़े ही सटीक प्रयोग हैं। इन गीतों के माध्यम से नाटककार ने कुछ पात्रों का परिचय कराया है, तो कुछ विभिन्न परिस्थितियों को भी रेखांकित किया है। नाटक के प्रारंभ में ही गायन-मंडली दुलारीबाई का परिचय देते हुए कहती है कि ये दुलारीबाई बिल्ली जैसी चौकन्नी है और दौड-दौडकर एक-एक कौडी अपने दाँत से पकड़ती रहती है। उसे कोई जोंक कह सकता है तो कोई खटमल की मौसी। लेकिन दो पैसे का नफा अगर हो जाता है तो उसके पैर जमीन पर टिकते ही नहीं। निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

"जोंक कहे कोई इसको या फिर खटमल की मौसी,
दो पइसे का नफा हो तो पैदल पहुँचे चन्दौसी।"[60]

दुलारीबाई नाटक में प्रार्थना गीत द्वारा पुश्तैनी जूतों के कारण होने वाली दुलारीबाई की मनःस्थिति, कृष्ण के भक्तों की मुनाफे की लालसा और काले धनवालों द्वारा मन्दिर का बनाना आदि पर व्यंग्य कसा गया है। प्रार्थना गीत के प्रारंभ में दुलारीबाई का जो चित्रण किया गया है, बड़ा ही मार्मिक है। उदाहरण दृष्टव्य है-

"हरे क्रिस्ना, हरे क्रिस्ना....
क्या होगा दुलारी बाई का ?
संकटमोचन। दूर करो अब, विपदा के सारे अंधेरे
मंदिर के सामने से जूते उठाएं, ऐसे तो चोर बहुतेरे

बेचारों की लाज बचा
हरे क्रिस्ना..."[61]

प्रस्तुत नाटक में कल्लू भांड राजा के वेश में रंगमंच पर प्रवेश करता है और वह जीवन की परिभाषा करता है कि जीवन एक झंझट जरूर है, लेकिन उस झंझट का मुकाबला करना चाहिए और मानव को अपनी निराशा को त्याग देना चाहिए तब ही वह जीवन में कामयाब हो सकता है। गायन मंडली के गीत के निम्नलिखित बोल जीवन की परिभाषा को स्पष्ट करते हैं -

"जीवन है झांसा, पलट दे पासा, तज दे निराशा
एक तमाशा - अच्छा-खासा बनायाSSS जिओ।।"[62]

हम डॉ॰सत्यवती त्रिपाठी के शब्दों में कह सकते हैं कि - "लोक-नाट्य की पद्धति अनुरूप गायन मंडली को नाटककार ने बराबर सक्रिय रखा है तथा नाटक के पात्र बीच-बीच में दर्शकों को संबोधित भी करते हैं। यही नहीं दुलारीबाई मंच पर अपने अवतरण के पश्चात् गायन मंडली के सदस्यों से एक अभिनेत्री के रूप में संवाद करती है। इस प्रकार के प्रयोगों को हम भारतीय लोक-नाट्य परंपरा के माध्यम से हिन्दी रंगमंच पर ब्रेख्त की शैली का पुनराविष्कार कह सकते हैं।"[63]

ई॰ <u>कबीर की विचारधारा के लिए प्रयोग</u> :- मणि मधुकर ने इकतारे की आँख नाटक में कबीर की कुछ साखियाँ और कुछ पदों को कुछ मात्रा में अपभ्रष्ट रूप देकर एक तरह से लोक-गीतों का ही प्रयोग किया है। मणि मधुकर ने कबीर की साखियों में चित्रित बाह्य आडम्बर को अपनी मनगढ़न्त साखियों द्वारा व्यक्त किया है। उन्होंने बाह्य आडम्बर के बारे में विचार व्यक्त किये हैं कि साधु बाहरी तौर से वेश बनाकर साधु बन जाता है, लेकिन भीतरी तौर से उसमें भंगार ही रहता है। वह दाढ़ी-मूंछ का मुंडन करता है, लेकिन अपने मन को साफ नहीं करता है। गायन मंडली के द्वारा नाटककार ने बाह्य आडम्बर का विरोध निम्नलिखित पंक्तियों में बताया है -

"साधू भया तो क्या भया, माला पहिरी चोर
बाहर भेस बनाइया, भीतर भरी भंगार
दाढ़ी मूंछ मुंडायके, हुआ घोटमघोट
मन को क्यों नहिं मूडिये, जामें भरिया खोट"[64]

साथ ही साथ कबीर ने संतों को उपदेश करते हुए कहा है कि हे संतों, वास्तव में लोग पागल हो गये हैं। उन्हें झूठे वचनों और आश्वासनों में विश्वास है और वे सच्चाई का विरोध करते हैं। निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

"सन्तो देखऊ जग बौराना
सांच काहे तो मारन धावे, झूठ जग पतियाना
सन्तो देखऊ जग बौराना"[65]

कबीर के "लाली मेरे लाल की "[66] पद की प्रथम दो पंक्तियाँ उधृत करके मणि मधुकर ने लाली शब्द के अर्थ का विस्तार गणेश वंदना के रूप में किया है। गायक मंडली के द्वारा कवि ने मुक्त छन्द में यह विचार व्यक्त किया है कि यह लाली शरम, पछतावा, भय, भ्रम, भुलावा, कुर्सी आदि में आजकल व्याप्त हुई है। निम्नलिखित अवतरण दृष्टव्य हैं -

"गायक-दो : लाली शरम और पछतावे की
गायक-तीन : लाली भय की, भरम भुलावे की
गायक-एक : लाली कुर्सी पर सड़ते पिट्ठू फुसफस्से की
गायक-दो : लाली तने हुए चेहरों पर गहरे गुस्से की
गायक-एक : लाली गरम-गरम लोहे के ताप की
गायक-दो : लाली कबिरा के सीधे आलाप की"[67]

उ. <u>रामधनिया का प्रयोग</u> :- कबीर ने रसगंधर्व नाटक में रामधनिया का एक विशिष्ट प्रयोग किया है। "रामधनिया एक आवाज है, एक साबुत आवाज- जो अकेलेपन में आदमी की टूटन को जोड़ती है।"[68]

नाटककार ने रामधनिया का प्रयोग प्रासंगिक रूप में अर्थपूर्ण शब्दों में किया है। "लोकधुन" का निम्नलिखित प्रयोग दृष्टव्य है -

"तू दुबला क्यों हो गया, रे भाई रामधनिया ?
तुझको क्या चिन्ता लग गयी, भाई रामधनिया ?
रामधनिया रे भाई रामधनिया।
तेरे घर में क्या है कमी, रे भाई रामधनिया ?
तेरी गर्दन हिलने लगी, रे भाई रामधनिया ?
कब तक यूं ही रहेगा ढाँचा
तू हड्डियों का ?
कब तक तेरी आँखों से
सूनापन बरसेगा ?
टूट गया, पर बता, और अब
कितना टूटेगा, रे भाई, कितना टूटेगा ?"[69]

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि -

xx लोक-नाट्य आमतौर पर आम आदमी का नाटक है, जिसमें साधारण जनता का ही चित्रण मुख्यतया किया जाता है।

xx मणि मधुकर ने अपने नाटकों में लोक-कथाओं का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। ये कथाएँ लोक-प्रचलित है, तथा इतिहास, पुराण आदि से भी बीज के रूप में ले ली गयी हैं। इन लोक-कथाओं को नाटककार ने आधुनिक जीवन संदर्भ में चित्रित करने का प्रयास किया है। ये लोक-कथाएँ बड़ी ही रोचक तथा आकर्षक हैं।

xx मणि मधुकर ने अपने नाटकों में लोक-जीवन के विभिन्न रूपों को रूपायित किया है। उनके नाटकों में सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक - सभी प्रकार का लोक-जीवन किसी न किसी रूप में चित्रित हुआ है।

xx मणि मधुकर के लोक-नाटकों में लोक-गीतों का भी अच्छा प्रयोग मिलता है उन्होंने लोक-गीतों के माध्यम से संस्कृत नाट्यशैली में प्रयुक्त मंगलाचरण का विडम्बनात्मक प्रयोग किया है। साथ ही साथ शेर-शायरी का प्रयोग करके नाटक अधिक रोचक बना दिया है। इतना ही नहीं, नाटककार ने पात्रों के चरित्र-चित्रण तथा जीवन विषयक कुछ विशिष्ट सूत्रों को व्यक्त करने के लिए लोक-गीतों का प्रयोग किया है। इन लोक-गीतों की भाषा आम आदमी की भाषा है।

xx अपने असंगत नाटकों में लोक-नाट्य-शैली को अपनाकर मणि मधुकर ने हिन्दी नाट्य-साहित्य में एक अभिनव प्रयोग करके पाठकों, प्रेक्षकों, आलोचकों सभी को चौंका दिया है।

संदर्भ :-

1· डॉ·महेन्द्र भानावत - लोकनाट्य : परंपरा और प्रवृत्तियाँ, संस्क·1971-72, पृ·3

2· डॉ·हरीन्द्र - प्रसाद का नाट्य साहित्य : परंपरा एवं प्रयोग, संस्क·अनुलेख्य,पृ·41

3· डॉ·दुर्गा दीक्षित - महाराष्ट्र का लोकधर्मी नाट्य, प्र·संस्क·1983, पृ·13

4· डॉ·सुषम बेदी - हिन्दी नाट्य : प्रयोग के संदर्भ में, प्र·संस्क·1984, पृ·11

5· डॉ·रीतारानी पालीवाल - रंगमंच : नया परिदृश्य, प्र·1980, पृ· 158-159

6· डॉ·सुषम बेदी - हिन्दी नाट्य प्रयोग के संदर्भ में, प्र·संस्क·1984, पृ·253

7· राणा प्रसाद शर्मा - पौराणिक कोश, द्वि·संस्क·1986, पृ·144-45

8· मणि मधुकर - रसगंधर्व, द्वि·संस्क·1978, पृ·77

9· मणि मधुकर - दुलारीबाई, संस्क·1985, पृ·23

10· - वही - पृ·41

11· - वही - पृ·44

12· - वही - पृ·48

13· - वही - पृ·49

14· - वही - पृ·51

15· - वही - पृ·62

16· - वही - पृ·68

17· - वही - पृ·76

18· मणि मधुकर (पिछला पहाड़ा)--·बुलबुल सराय·, संस्क·1988, पृ·209

19· - वही - पृ·210-11

20· - वही - पृ·211

21· - वही - पृ·214

22· डॉ·हजारी प्रसाद द्विवेदी - कबीर , तृ·संस्क·1976, पृ·19

23· मणि मधुकर - इकतारे की आँख, प्र·संस्क·1980, पृ·38

24· - वही - पृ·64-65

25· - वही - पृ·60

26· - वही - पृ·77-78

27· डॉ·सत्यवती त्रिपाठी - आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता, प्र·संस्क·1991, पृ·158

28· डॉ·श्रीनारायण श्रीवास्तव - भारत में बौद्ध निकायों का इतिहास, संस्क·1981, पृ·12

29· - वही - पृ·12

30· भिक्षु निर्गुणानन्द - बुद्ध विश्व-विजय, प्र·संस्क·1982, पृ·39

31· - वही - पृ·113

32· मणि मधुकर - बोलो बोधिवृक्ष, प्र·संस्क·1991, पृ·29

33· मणि मधुकर - दुलारीबाई, संस्क·1985, पृ·49

34· - वही - पृ·60

35· - वही - पृ·60

36· - वही - पृ·61

37· - वही - पृ·47

38· - वही - पृ·53

39· - वही - पृ·30

40· - वही - पृ·27

41· - वही - पृ·67

42· मणि मधुकर - इकतारे की आँख, प्र·संस्क·1980, पृ·41-42

43· - वही - पृ·43

44· - वही - पृ·19

45· मणि मधुकर - दुलारीबाई, संस्क·1985, पृ·39

46· मणि मधुकर - इकतारे की आँख, प्र·संस्क·1980, पृ·15

47· - वही - पृ·22-23

48· - वही - पृ·48

49· मणि मधुकर - दुलारीबाई, संस्क·1985, पृ·65

50· मणि मधुकर - इकतारे की आँख, प्र·संस्क·1980, पृ·53-54

51· - वही - पृ·40-41

52· - वही - पृ· 59

53· - वही - पृ·45

54· - वही - पृ·67

55· संपा·डॉ·जयदेव सिंह, डॉ·वासुदेव सिंह - कबीर वाड्मय : खण्ड 2 "सबद", प्र·संस्क·1981, पृ·211

56· मणि मधुकर - इकतारे की आँख, प्र·संस्क·1980, पृ·33

57· मणि मधुकर - दुलारीबाई, संस्क·1985, पृ·15

58· - वही - पृ·19

59· - वही - पृ·22

60· - वही - पृ·14

61· - वही - पृ·46

62· - वही - पृ·68

63· डॉ· सत्यवती त्रिपाठी - आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता, प्र·संस्क·1991 पृ·158

64· मणि मधुकर - इकतारे की आँख, प्र·संस्क·1980, पृ·54

65· - वही - पृ·55

66· डॉ·हजारी प्रसाद द्विवेदी - कबीर, तृ·संस्क·1976, पृ·349

67· मणि मधुकर - इकतारे की आँख, प्र·संस्क·1980, पृ·34-35

68· मणि मधुकर - रसगंधर्व, द्वि·संस्क·1978, पृ·69

69· - वही - पृ·68